सन्त कबीर का वैष्णव चिन्तन

प्रो. श्यामसुन्दर शुक्ल

सन्त कबीर के वास्तविक साधना सिद्धान्त क्या थे, इस विषय में इदमित्थं कहना संभव नहीं है। वे स्वभाव से सारग्राही थे। समकालीन सभी प्रकार के आचार विचारों में से उन्हें जो उपयुक्त, देशकालोचित एवं सर्वमंगलकारी लगा उसे स्वीकार करने में उन्हें कोई हिचक नहीं हुई और जो उनकी दृष्टि में थोथा था या स्वीकार योग्य नहीं था उसे उन्होंने दृढ़ता के साथ त्याग दिया। उनके चिन्तन के विषय में विभिन्न सूत्रों, साक्ष्यों एवं मान्यताओं से जो निष्कर्ष निकलते हैं, उनके आधार पर यह सप्रमाण कहा जा सकता है कि वे अपने युग के युगावतार वैष्णव आचार्य स्वामी रामानन्द के वैष्णव चिन्तन से सर्वाधिक प्रभावित थे। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि उनका लालन-पालन एवं जीवन का अधिकांश समय काशी में ही व्यतीत हुआ था। वे स्वानी रामानंद के साढ़े बारह सगुण एवं निर्गुण मार्गावलम्बी शिष्यों में से निर्गुण भक्त माने जाने वाले शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ थे।[1] इन शिष्यों की सूची इस प्रकार मिलती है—

श्रीमदनन्तानन्दस्तु सुरसुरानन्दस्तथा ।
नरहरियानन्दस्तु योगानन्दस्तथैव च ॥
सुखाभवागालवश्च सप्तैते नाम नन्दनाः ॥
कबीरश्च रबीदासः सेना पीपाधनस्तथा ।
पद्मावती तदर्द्धश्च षडेते च जितेन्द्रियः ॥[2]

स्वामी रामानन्द (14वीं शती) का उत्तरी भारत की वैष्णवाचार्य परम्परा के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व है। काशी में रहते हुए उन्होंने निर्गुणात्मक सगुण भक्ति, युगानुकूल बाह्य एवं मानसी साधना पद्धति तथा प्रगतिशील विशिष्टाद्वैत मत के दार्शनिक चिन्तन का समूचे भारतमें व्यापक प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने ब्रह्म को राम-नाम से अभिहित किया और उनके निर्गुण तथा सगुण दोनों प्रकार की उपासना पद्धतियों का प्रतिपादन किया। ऊपर उद्धृत श्लोक से भी इस बात की पुष्टि होती है कि उनकी शिष्य मंडली में 'आनंद' आस्पदधारी सात शिष्य सगुणमार्गी थे जब कि पद्मावती के साथ ही अन्य पांच शिष्य (जिनमें कबीर अद्वितीयथे) निर्गुणमार्गी थे।

स्वामी रामानन्द द्वारा प्रवर्तित 'रामवत संप्रदाय' के सीता राम उपास्य हैं। साधना-उपासना के क्षेत्र में जाति-पांति, धर्म-संप्रदाय और स्त्री-पुरुष के भेद सम्बन्धी विचार शिथिल हैं। आचार सम्बन्धी अनेक पूर्ववर्ती वर्जनायें भी अल्पमात्रा में ही रह गई थीं। उन्होंने भक्ति के उसी मार्ग का अवलम्ब ग्रहण किया, जिसका प्रतिपादन उनके पूर्व ही शांडिल्य और नारद के भक्तिसूत्रों में किया जा चुका था और जो श्रीमद्भागवत से समर्थित था। उन्होंने ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति के समन्वित रूप का व्यापक प्रचार किया। उनकी राम भक्ति की निर्गुण चिन्तनधारा ने ब्राह्मणेतर जातियों के पुरुष तथा स्त्री साधकों को भी आकर्षित किया। यद्यपि कबीर ने स्वामी रामानन्द के रामोपासना के पंच संस्कारों, यथा मुद्रांकन, ऊर्ध्व पुण्ड्रधारण, नामकरण, मंत्रजप और तुलसी की माला के धारण जैसे विधानों तथा सगुण राम के स्थान पर निर्गुण राम को ही अपना उपास्य माना, फिर भी अनन्य भगवत्प्रेम, ससत् रामनाम स्मरण, प्रपत्ति, भगवत्कैंकर्य, सद् वृत्तितयों का पालन और असद्वृत्तियों का त्याग जैसे सिद्धान्तों को समग्रता के साथ ग्रहण किया और इनका व्यापक प्रचार भी किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि साधना और लोक व्यवहार दोनों क्षेत्रों में सन्त कबीर स्वामी रामानन्द के सिद्धान्तों के पक्षधर हैं। ज्ञातव्य है कि रामभक्ति में माधुर्योपासना के विधान, शास्त्रबन्धन से मुक्त भक्ति साधना की स्वीकृति, समता एवं समन्वयमूलक दृष्टि का संपोषण और नामपंथी चिन्तन समन्वित विशिष्टाद्वैत दर्शन आदि को संत कबीर ने अपने गुरु के आदेशानुसार ही ग्रहण किया। यह वही भक्ति मार्ग है जो स्वामी राघवाचार्य (रामानंद के गुरु) कृत "सिद्धान्त पंचमात्रा) नामक ग्रन्थ में संकेकित है और स्वामी रामानन्द के वैष्णवमताब्ज भास्कर नामक ग्रंथ द्वारा व्याख्यायित है।

दूसरी ओर संत कबीर की साधनामूलक आचार-विचार सम्बन्धी मान्यताओं पर दक्षिण भारत के नायनार एवं आलवार भक्तों से प्रभावित महाराष्ट्र के कृष्णभक्त कवियों का भी कम प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। उस समय दक्षिण के श्री शठकोपाचार्य, कुरेश स्वामी, लोकाचार्य, अन्दाल और बखर मुनि आदि का महाराष्ट्र पर प्रभूत प्रभाव पड़ा था। अत: संत कबीर के पूर्व और समकालीन श्री भानुदास महाराज, सन्त एकनाथ, अनन्त महाराज, तुकाराम, कान्होबा (तुकाराम के छोटे भाई), बहिणा बाई (तुकाराम की शिष्या), केशव स्वामी, अमृत राम, कृष्णदास, देवनाथ, गुलाब महाराज और माणिक आदि का उत्तर भारतमें व्यापक प्रभाव स्थापित हुआ था। सन्त नामदेव ने महाराष्ट्र के अतिरिक्त पश्चिमोत्तर भारत में प्राय: उसी वैष्णव चेतना का प्रचार-प्रसार किया, जिसे कबीर ने अपने ढंग से प्रचारित किया।

संत नामदेव के बारकरी सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण श्री बिट्ठल के नाम से उपास्य थे। यहाँ साधना और उपासनापद्धति सगुण-निर्गुण समन्वित रूप में थी। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों और सिद्धान्त प्रचारकों में गोरा कुम्हार, सांवता माली, संत चोखामेला, जनाबाई, नरहरि सुनार, सेनानाई तथा महाराष्ट्र और निकटवर्ती प्रान्तों के अन्य अनेक तत्कालीन सन्त सम्मिलित थे। काशी इन सबका तीर्थ था। अत: परस्पर साधनामूलक विचारों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया जारी थी। इन सभी सन्तों ने समवेत रूप से व्यष्टि साधना को समष्टि-हित में प्रयोज्य बनाने का निरन्तर प्रयास किया। इनके उपदेशों का प्रचार - प्रसार था, जिसके मूल में एकात्मक, समरसता और भावनात्मक ऐक्य के वातावरण के निर्माण लक्ष्य के रूप में था। अत: यह मान्यता कि 'हिन्दू जागरण का मुख्य क्षेत्र वैष्णव मतों को है', तर्क संगत है।

दलित या सवर्णेतर जातियों में जातिगत हीनता की भावना के स्थान पर आत्मगौरव के भाव की जागृति इन्हीं भक्तों की देन है। फलत: नामदेव, कबीर, रैदास और सेन प्रभृति सन्तों ने अपनी जाति का उल्लेख सगर्व किया है और उसे छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है। स्वयं कबीर अपने को 'कोरी' या 'जुलाहा' कहने में तनिक भी हिचक नहीं दिखाते हैं। गर्व से कहते हैं—

जाति जुलाहा मति को धीर। हरषि हरषि गुण रमै कबीर ॥[3]

x x x

तु बाभन मैं कासी का जुलाहा बूझहु मोर गियाना।

x x x

मेरे राम की अभैपद नगरी कहै कबीर जुलाहा।

x x x

जुलाहै तनि बुनि पार न पावल -

x x x

कोरी को काहू मरम न जाना।[4] **आदि ।**

उनका तर्क है कि—

एक बूँद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा ।
एक जोति से सब जग उत्पना, कौन बाभन कौन सूदा ॥[5]

कबीर कहते हैं कि मेरी जाति का जो लोग उपहास करते हैं उन्हें समझना चाहिए कि इसी जाति में एक ऐसा भी व्यक्ति पैदा हुआ है जो भगवान् का सच्चा भक्त है।[6] इसके विपरीत सर्वोन्नत ग्रीवा ब्राह्मण और तुर्क से वे पूछते हैं कि वे उनसे किस बात में भिन्न हैं? अत: वे ब्राह्मण देवता से पूछते हैं—

जो तूं बाभन बाभनी जाया। तौ आन बाट ह्वै काहे न आया?

इसी प्रकार तुर्क से भी पूछते हैं—

जो तूं तुरक तुरकनी जाया। भीतर खतना क्यों न कराया?

तात्पर्य यह कि निर्गुण भक्ति साधना ने संत कबीर की अगुवाई में सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र में नवजागरण का जो समवेत शंखनाद किया उसकी प्रतिध्वनि आज भी वातावरण में व्याप्त है। फलत: आज भी शैव और वैष्णव अनी एवं अखाड़ों में इन्हीं सवर्णेतर जातियों का वर्चस्व और बाहुल्य है। गीध, व्याध और सबरी के उद्धारक श्रीराम ने स्वयं जब किसी जातीय भेदभाव को महत्त्व न देकर केवल भाव को ही सम्मान दिया तो उनके उपासकों को इसके विपरीत आचरण करना शोभा नहीं देता। तात्पर्य यह है कि जातीय और सांप्रदायिक सद्भाव की स्थापना में कबीरादि रामोपासक भक्त कवियों का योगदान अत्यन्त मूल्यवान है। इसी बात को लक्षित करते हुए 'भक्तमाल' के रचयिता और रामानन्दी शिष्य परम्परा से सम्बन्धित भक्तप्रवर नाभादास ने कबीर के विषय में उचित कहा है—

कबीर कानि राखी नहीं बरनाश्रम षट दरसनी ।
भक्ति विमुख जे धरम ताहि अधरम करि गायो ।
जोग जग्य जप दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ॥[7]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि सन्त कबीर भक्ति-विमुख और पाखंडी साधना मार्गों के विरोधी थे। ऐसे साधना मार्गों में वे हठयोगियों, शाक्तों, शैवों और तांत्रिक साधना संप्रदायों की गणना करते थे। इनमें भी शाक्तों, शैवों और तांत्रिक साधना संप्रदायों की गणना करते थे। इनमें भी शाक्तों के तो वे कट्टर विरोधी थे। उनकी निम्न उक्तियाँ इस तथ्य के प्रमाण स्वरूप उद्धृत की जा सकती है—

साखत बाभन ना मिले, बैस्नो मिले चंडाल ।
अंकमाल दै भेंटिये, मानो मिले गोपाल ॥

अथवा

बैस्नों की छपरी भली, ना साखत बड़ गाँव ।
चन्दन की कुटकी भली, ना बबूर अँवराउँ ॥

वैष्णवी भक्ति और कबीर

कबीर की भक्तिमूला रामोपासना का उद्देश्य किसी भी प्रकार के स्वार्थ से प्रेरित नहीं था। उसके मूल में जनहित की भावना निहित थी। यहाँ तक कि भुक्ति और मुक्ति की कामना से भी उनकी भक्ति का कोई सम्बन्ध नहीं था। यदि उनकी कोई इच्छा भी थी तो यही कि उनके आराध्य प्रियतम श्री राम संसार के दुखी प्राणियों के दु:ख का हरण करें। कबीर की भक्ति में भक्ति के सभी नौ प्रकार, जिन्हें 'नवधा भक्ति' कहा जाता है, न्यूनाधिक मात्रा में सम्मिलित हैं। यहाँ तक कि पीर-औलिया आदि की मान्यताएँ भी उसमें अन्तर्भुक्त हैं। अन्य साधना संप्रदायों या मार्गों के अनुयायी किसी एक विशिष्ट रंग तक ही सीमित रह जाते हैं परन्तु कबीर की भक्ति में इतने रंग मिले हुए हैं कि वे सबसे अलग ही दिखाई देते हैं। इस स्थिति की ओर संकेत करते हुए वे स्वयं ही कहते हैं—

सतगुरु हो महाराज सांई मो पै रंग डारा ।
सुरजन मुनिजन पीर औलिया, कोई न पावै पारा ॥
साहब कबीर सर्व रंग रँगिया, सब रंग तें रंग न्यारा ॥

ज्ञान और योग इस भक्ति के सहायक तत्त्व हैं। संयम, सदाचार, प्राणवायु-नियमन, अजपाजाप, धारण, ध्यान, समाधि और योग के अन्य प्रकार एवं अंगोपांग तन-मन को संयमित तथा स्वस्थ बनाने में सहायक होते हैं। फलत: स्वस्थ व्यक्ति के आचर-विचार भी उत्तम होते हैं। इसीलिए संत कबीर की बानियों में उपलब्ध योग सम्बन्धी उक्तियाँ उनकी भक्ति के स्वरूप के ही निर्धारक साधन हैं।

यद्यपि कबीर की भक्ति प्रेममूला थी परन्तु वह स्वामी रामानन्द द्वारा अनुमोदित सगुण और निर्गुण भक्ति से कुछ

भिन्न थी। जहाँ स्वामी जी की यह द्विविधा भक्ति मुख्यत: वेद-पुराणानुमोदित और पठित अथवा साधनाजन्य ज्ञान पर आधारित थी, वहीं कबीर की भक्ति स्वानुभूतिप्रेरित एवं रहस्यवादी थी। उनकी मान्यता थी कि पोथी पढ़कर ज्ञान बघारने वालों और जाति, पद-प्रतिष्ठा और बल के आधार पर अहम्मन्य व्यक्तियों से सर्वसमर्पणमय प्रेम भक्ति हो ही नहीं सकती। उनका अनुभव है कि कामी, क्रोधी और लालची व्यक्तियों से साधना असंभव है। यह तो उसी के लिए गम्य है जो विनम्र, सर्वसमन्वयी, त्यागी और पाखंडरहित हों और जिनमें इतना आत्म समर्पण हो कि वे खुलकर कह सकें—

मैं गुलाम मोहिं बेंचि गुसाई। तन मन धन मेरा राम जी की ताई ।
बेचै राम तो राखै कौन राखै राम तो बेचै कौन ॥

अथवा

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरो नाउँ ।
गले प्रेम की जेंवड़ी, जित खैंचे तित जाऊँ ॥
तू तू करै तो बाहुड़ौं, दुर दुर कहै त जाऊँ ।
ज्यों राखै तैसैं रहौं, बेचै तो बिक जाऊँ ॥

भक्ति के लिए विनयी होना परमावश्यक है। यह अहंकार का विरोधी भाव है और भक्ति के प्रमुख लक्षणों में से एक है। कबीर स्वयं भी ऐसे ही हैं और अन्यों से भी यही अपेक्षा करते हुए कहते हैं—

रोड़ा ह्वै रहु बाट का, तजि पाखंड अभिमान ।

x x x

कबीर चेरा संत का, दासन का परदास ।
कबीर ऐसे ह्वै रहा, ज्यों पाऊँ तर घास ॥

इस प्रकार कबीर साहित्य के अध्येता को उनकी बानियों में स्थान-स्थान पर दैवी गुण-सम्पदा को अपनाने और आसुरी वृत्तियों को त्यागने का आग्रह मिलेगा। श्रीमद्भगवद्गीतानुमोदित इन वृत्तियों के ग्रहण और त्याग के लिए जिन गुणों और अवगुणों के नाम बताये गये हैं वे निम्नवत् हैं—

गीतोक्त दैवी गुणसंपदा— (1) अभय, (2) सत्वसंशुद्धि (अन्त:करण की निर्मलता), (3) ज्ञान में दृढ़स्थिति, (4) ध्यानयोग में दृढ़स्थिति, (5) दान, (6) इन्द्रिय दमन, (7) भगवान् और गुरुजनों की पूजा, (8) उत्तम कर्मों का आचरण, (9) भगवान् के गुणों-नामों की संकीर्तन, (10) सतसंग, (11) अहिंसा, (12) सत्य, (13) अक्रोध, (14) त्याग, (15) शान्ति, (16) कर्तापन के अभिमान का त्याग, (17) चित्त की चंचलता का अभाव, (18) किसी की निन्दा न करना, (19) सर्व प्राणियों के प्रति दया का भाव, (20) इन्द्रिय विषयों के प्रति अनासक्त भाव, (21) कोमलता विनम्रता, (22) लोक-शास्त्र विरुद्ध अनाचरण, (23) लज्जा, (24) अचापल्य, (25) तेज, (26) क्षमा, (27) धृति, (28) दम, (29) शारीरिक-मानसिक विशुद्धि, (30) किसी के शुत्रभाव का न होना, (31) पिशुनता त्याग, (32) सात्त्विक आहारी, (33) ज्ञानी जनों का पूजन, (34) पवित्रता सरलता, ब्रह्मचर्य के साथ शारीरिक तप आदि।

आसुरी प्रवृत्ति— (1) दंभ, (2) दर्प, (3) क्रोध, (4) कठोरता, (5) अज्ञान, (6) अशुचि, (7) असत्याचरणरत, (8) जगत् को अनीश्वर मानने वाले, (9) काम हैतुक सृष्टि में विश्वास वाले, (10) क्रूरकर्मा, (11) दंभी, (12) अभिमानी, (13) मदान्वित, (14) आचरणभ्रष्ट, (15) असंख्य चिन्ताओं से युक्त, (16) विषयोपभोगासक्त, (17) लोभी, आशाओं के पाश में बंधे हुए, (18) काम-क्रोध परायण, (19) अन्याय पूर्वक धनादि संग्रही, (20) असत् संकल्पी, (21) मोहजाल ग्रस्त, (22) धन-मान-पद आदि के मद से ग्रस्त, (23) एक दूसरे से परहेज, घृणा और न्यून या अधिक का भाव रखने वाला, (24) असात्त्विक आहार-विहार-खाद्य-पेय आदि।

भक्ति के सहायक तत्त्व

भगवद्भक्तों की मान्यता है कि बिना श्रद्धा, विश्वास, अनन्य शरणागति, सत्संग, गुरु का मार्ग दर्शन, एकान्त चिन्तन, मनोमारण, साधु सेवा, सर्व समर्पणमय एकान्तिक प्रेम, ज्ञान, वैराग्य, तितिक्षा और नि:स्वार्थता के भक्ति भावना की सिद्धि संभव नहीं है। भक्ति के उच्च सोपान पर पहुँचने के पूर्व गुरु और साधु के प्रति उत्कट निष्ठा परमावश्यक है। साथ ही आराध्य के प्रति भी सगुण, साकार और सोपाधि—भावना होनी चाहिए क्योंकि प्रेम का आस्पद निराकार नहीं हो सकता। इस अनुभव से अवगत संत कबीर ने अपने प्रेमास्पद श्रीराम को गोविन्द, दाता, अमृत की खानि, प्रियतम, ठाकुर, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, गोपाल और गिरिधर आदि सगुणवाची विशेषणों से अनेकश: स्मरण किया है।

ऐसे प्रेमी भक्त की प्रेमकामना प्रतिदान रहित, प्रति क्षण बर्द्धमान, अविच्छिन्न, स्वानुभूतिमय और गूँगे के स्वाद-भेद वर्णन के समान अवर्णनीय होती है। ऐसा प्रेमी अपने प्रियतम में अपना समूचा अस्तित्व इस प्रकार मिला देता है जैसे नमक का अस्तित्व पानी में समा जाता है। अर्थात् दोनों एकाकार हो जाते हैं। इस तथ्य का समर्थन करते हुए भक्त नाभादास ने भी कहा है—

भक्ति भक्त भगवंत गुरु, चतुर नाम बपु एक ।
इनके पद वन्दन किये, काटैं विघन अनेक ॥

अर्थात् भक्ति, भक्त, भगवान् और गुरु—ये चारों एक ही तत्त्व हैं, केवल नाममात्र से अलग-अलग होते हैं या प्रतिभासित होते हैं।

संत कबीर की भी अपने आराध्य से एकाकारता वैसी ही है जैसे प्रेमी-प्रेमिका या पति-पत्नी की होती है। इसमें किसी दुराव या छिपाव को स्थान नहीं था। कबीर ने स्वयं स्वीकार किया है कि 'हरि मेरे पीव मैं राम की बहुरिया' अथवा 'दुलहिनी' गावतु मंगलचार, हम घर आये राजा राम भतार' अथवा 'हरि मेरो पीव माई हरि मेरो पीव, उन बिन रहि न सकै मेरो जीव।' इस प्रकार वे राम की केवल व्याहता पत्नी ही नहीं हैं बल्कि उनकी दासी, चेरी और स्वामिनी भी हैं। परन्तु यह सम्बन्ध प्रेमा भक्ति या दाम्पत्यरति-भाव के सुदृढ़ हो जाने के बाद ही स्थापित हुआ था। भक्ति की प्रारम्भिक अवस्था में तो आराध्य राम माता, पिता, गोसाईं, प्रतिपालक और संरक्षक आदि पदों पर ही आसीन थे। परन्तु कबीर की विरहानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति की गहराई का अन्य कोई भी भाव स्पर्श नहीं कर सकता, यह सिद्ध है उनकी विरह-साधना अद्वितीय है।

संत कबीर साहब के रहस्यमय व्यक्तित्व के विषय में मात्र यही कहा जा सकता है कि 'जाकी रही भावना जैसी, हरि मूरत देखी तिन तैसी' की भांति वे कर्ममार्गी थे या ज्ञानमार्गी अथवा भक्तिमार्गी। यह प्रश्न अपने आप में एक उलझन का विषय है। क्योंकि उनकी साधनागत आचार-विचार सम्बन्धी मान्यताओं का विशुद्ध स्वरूप भी स्पष्ट नहीं है। कोई उन्हें रहस्यवादी कहता है, तो कोई समाज सुधारक या धर्मनेता। कबीर के साहित्य में वर्णित योग साधना की प्रक्रिया और अनुभूति का विशद चित्रण, नाड़ी, चक्र, सुरति-निरति और ब्रह्मरन्ध्र आदि की बातें उन्हें विशुद्ध भक्त मानने में बाधक हैं। फिर भी उनकी रचना में प्रेमतत्व, पति-पत्नी, सेवक-सेव्य, पिता-पुत्र आदि सम्बन्धों से संबद्ध जो रहस्य संकेतित हैं, वे उन्हें किसी भी सगुण भक्त की कोटि में रखने के लिए पर्याप्त सबल प्रमाण हैं।

कबीर अपने चतुर्दिक् व्याप्त परम्परागत के नवोन्मेष की उपज हैं। 15वीं शती से अब तक के भारतीय को उनकी देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वे जिस वातावरण में अवतरित हुए, पले और कर्मरत हुए वह काशी का भक्तिमूलक परिवेश था। उस समय भक्ति की लहर ने बौद्ध, जैन, नाथपंथ, बारकरी संप्रदाय, सूफी संप्रदाय तथा तत्कालीन अन्यान्य साधना संप्रदायों को अपने प्रभाव से अभिभूत कर लिया था। यह भक्ति मूलत: दक्षिण भारत के नायनारों (शिवभक्तों) और आलवारों (वैष्णव भक्तों) की देन थी जो अंशत: रामानुज द्वारा ही उत्तर भारत में लाई गई थी परन्तु कबीर ने उसका श्रेय अपने गुरु रामानन्द को ही दिया था। आगे चलकर वैष्णव साधना के विकास के साथ अपनी सुलभता, सरलता,

सुगमता, सुबोधता, निरूपाधिय, फलरूपता और अन्य विशेषताओं के कारण भक्ति को अन्य साधना मार्गों से श्रेष्ठ माना गया कबीर सहित हिन्दी के अन्य भक्तकवि भारतीय भक्ति परम्परा की ही एक कड़ी हैं। अनुभूति में वे शत प्रतिशत भारतीय परम्परा के भक्त हैं, उसकी अभिव्यक्ति में चाहे भले ही उन पर इस्लाम सूफी और नाथ संप्रदायों का किंचित् प्रभाव दिखाई देता है।[8]

कबीर की भक्ति-साधना जैनों और वैष्णवों की भाँति आचार की शुद्धता पर अधिक बल देती है। जहाँ तक आत्मज्ञान की आवश्यकता, मनोमारण, भक्ति में शूरता की भावना, आचारहीन ज्ञान का निषेध, निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप के निरूपण करते हुए भी उससे एकान्तिक प्रेम की अनुभूति, गुरु का महत्त्व प्रतिपादन, कर्मवाद और पुनर्जन्मवाद का समर्थन, सदाचार की महत्ता का आख्यान, पाखंडरत साधकों की निन्दा, कथनी एवं करनी में सामंजस्य, शून्य में निरंजन को पाने की कल्पना, कायक्लेशविहीन, योगाचारों मं विश्वास, वादविवाद से परे रहने की प्रवृत्ति, मूर्तिपूजा का खण्डन, जातिगत भेद-भावों से घृणा, व्रत-तीर्थाटन तथा वैधी परम्परानुमोदित साधना में अविश्वास, भक्ति-भजन का उपदेश, सत्संग की महत्ता का प्रतिपादन, नारी-निन्दा, जीवहत्या-निषेध, असत्यभाषण की निन्दा, सूक्ष्म या 'सुषम' वेद की दुहाई, वेदपाठी पण्डित के थोथे ज्ञान का पर्दाफाश, घटतीर्थ की चर्चा आदि की बातें हैं, संत कबीर नाथ परम्परा तथा उस समय के अधिकांश साधना संप्रदायों की एक जीवन्त कड़ी हैं। ऐसा इसलिए हुआ कि उस युग के सांस्कृतिक परिवेश में इसी प्रकार के आचर-विचार देश-कालोचित रह गये थे, इसी आवश्यकता का अनुभव करके रामानन्द जैसे वैष्णव आचार्य भी इन्हीं सब बातों को अपनाकर कबीर जैसे भक्त के गुरु-पद के अधिकारी बने।

कबीर की भक्ति-साधना पर सूफी प्रभाव

जिस समय कबीर अपनी सहज साधना या आडम्बर विहीन भक्तिसाधना का प्रचार करने के लिए कृतसंकल्प होकर समाज के बीच आये, उन्हें सूफियों से भी कड़ी होड़ लेनी पड़ी। अन्ततः शेखतकी, अकरदी, सकरदी आदि को उन्हें समझते देर न लगी कि सूफी साधना की निम्नलिखित सभी 14 अवस्थाएं उनकी साधना में भी अर्न्तभुक्त हैं— (1) सत्य की खोज के लिए तीव्र उत्सुकता या जिज्ञासा, (2) गुरु की खोज और उसकी प्राप्ति हो जाने पर उससे दत्तचित्त होकर उपदेश ग्रहण करना, (3) आध्यात्मिक जागरण की अवस्था, (4) विवेक और वैराग्य की अवस्था, (5) आत्मपरिष्कार की अवस्था भावातिरेक की अवस्था, (6) आंशिक अनुभूति की अवस्था, (7) साधना के मार्ग में आने वाले विघ्नों से संघर्ष, (8) विरहानुभूति, (9) आत्मसमर्पण की अवस्था, (10) मिलन की पूर्वावस्था, (11) मिलन की अवस्था की आनन्दानुभूति, (12) पूर्णरूपेण आत्मसर्मपण और (13) तादात्म्य (सोऽहं) की अवस्था। इन सबको सूफी शब्दावली में (1) शरीअत (तोबा, रिआज, खौफ, मुहब्बत आदि), (2) तरीकत (प्रज्ञोदय के पूर्व की स्थिति), (3) मारिफत (अनुभूति) और (4) हकीकत (ज्ञानापन्नता की अवस्था) के अन्तर्गत अन्तर्मुक्त समझना चाहिये। भारतीय साधना पद्धति में ये चार सोपान मुख्यतः कर्मकाण्ड, उपासना, ज्ञान और निर्वाण के वाचक हैं।

यद्यपि कबीर की 'प्रेम-भगति' या प्रेमाभक्ति-साधना के स्वरूप निर्धारण में सूफी प्रेम-साधना का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है, फिर भी कहा जा सकता है कि कबीर के पास एक ऐसा निजी साँचा था, जिसमें ढालने के बाद ही वे किसी की बात स्वीकार करते थे। साधना के सम्पूर्ण स्वरूप को छोड़कर यदि केवल उनकी प्रेम-साधना पर ही विचार करें तो पायेंगे कि इस क्षेत्र में वे न तो पूर्णतः वैष्णव-चिन्तन के प्रभाव में थे और न समग्रतः सूफी प्रभाव के ही अन्तर्गत थे तथापि कबीर की प्रेमानुभूतियों की अभिव्यक्ति में भारतीय प्रेमाभिव्यक्ति की मर्यादापूर्ण पद्धति से कुछ अन्तर आवश्य दिखाई देता है। जहाँ भारतीय प्रेम-साधना, माधुर्य से ओत-प्रोत है, वहाँ कबीर का प्रेम बड़ा ही मादक है। भारतीय प्रेम जहाँ मर्यादा की एक लक्ष्मण-रेखा के भीतर ही बना रहता है, वहाँ कबीर का प्रेम एक मुखर एवं प्रौढ़कुलवधू का प्रेम है। यह ऐसा प्रेम है जो लोकलाज छोड़, खुलकर खेलने का समर्थक है। वहाँ लज्जा या द्वैत को कोई स्थान नहीं है।[9]

भारतीय प्रेमानुभूति और अभिव्यक्ति तथा सूफी प्रेमानुभूति एवं अभिव्यक्ति के कुछ अन्य अन्तर भी हैं जो उपर्युक्त की ही कड़ी में हैं। एक में पूर्ण संयम और संतोष है तो दूसरे में असंयम और असंकोच। एक में सब कुछ पचा लेने की क्षमता है तो दूसरे में सब कुछ कह डालने की उत्सुकता दिखाई देती है। एक परमप्रियतम के कृपाकटक्ष और सान्निध्य के लिए लालायित है तो दूसरा प्रेम (वियोग) की पीड़ा में तड़पते रहने में ही आनन्द की झलक देखता है। एक प्रिय का साक्षात्कार चाहता है तो दूसरा केवल 'प्रेम की पीर' की देहली पर दिया जलाये रहने में ही जीवन की सार्थकता मानता है। एक पकृति के प्रागंण में प्रिय का दर्शन करता है तो दूसरा अपने परमप्रियतम को 'नैनों को कोठरी' में बन्द कर दृश्य जगत् से आँखें मूँद लेना चाहता है। एक के प्रेम में विनय और कोमलता है तो दूसरे में उन्मत्तता है। एक का परमप्रियतम जगत् का एकमात्र पुरुष है और शेष जितने भी नर-नारी हैं, सब उसकी पत्नियों के सदृश हैं तो दूसरा अपने आराध्य को ऐसी नारी के रूप में मानता है जो सारे संसार की अधिष्ठात्री तथा आकर्षण का केन्द्र है। इतना वैचारिक अन्तर होने पर भी भारतीय और सूफी प्रेम में इतनी समानता प्रत्यक्ष है कि दोनों अपने प्रेम देवता को पाने के लिए समान रूप से लालायित रहते हैं।

सूफियों की विचारधारा और अभिव्यक्ति शैली का प्रभाव केवल ज्ञानमार्गी शाखा के अन्तर्गत गिने जाने वाले संतों पर ही नहीं पड़ा था अपितु कृष्णभक्ति शाखा पर भी न्यूनाधिक रूप से पड़ा था। इस दृष्टि से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन यहाँ उद्धरणीय है—

> *सूफियों का असर मीरा के अतिरिक्त कुछ और कृष्णभक्तों पर पूरा-पूरा पड़ा था। चैतन्य महाप्रभु में सूफियों की प्रवृत्तियाँ साफ झलकती हैं। जैसे सूफी कौव्वाल गाते-गाते 'हाल' ही हालत को प्राप्त हो जाते हैं, वैसे ही महाप्रभु जी की मण्डली भी नाचते-गाते मूर्छित हो जाती थी। इसी प्रकार मद, प्याला, उन्माद तथा प्रियतम ईश्वर की दुरारूढ़व्यंजना भी सूफियों की बंधी परम्परा है, जिसका अनुसरण कुछ परवर्ती कृष्णभक्त कवियों ने भी किया है। नागरी दास जी 'इश्क का प्याला' पीकर बराबर झूमा करते थे। निर्गुण शाखा के कबीर, दादू आदि संतों की परम्परा में ज्ञान का जो थोड़ा-बहुत अवयव है, वह भारतीय वेदान्त का है पर प्रेमतत्व बिल्कुल सूफियों का है। इनमें से दादू, दरिया साहब आदि तो खालिस सूफी जान पड़ते हैं।*[10]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की उक्त धारणा के प्रतिकूल डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि "यदि कबीर आदि निर्गुणवादी संतों की वाणियों की बाहरी रूपरेखा पर विचार करें तो मालूम होगा कि यह पूर्णत: भारतीय है और बौद्ध धर्म के अन्तिम सिद्धों और नाथपंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा सम्बन्ध है.... क्या भाषा, क्या भाव, क्या अलंकार, क्या छंद, क्या पारिभाषिक शब्द—सर्वत्र वे ही कबीरदास के मार्ग दर्शक हैं।"[11] इस सन्दर्भ में द्विवेदी जी का एक तर्क यह भी है कि 'कबीरादि संत कवियों ने यदि प्रेम का तत्व सूफी साधना ने लिया भी हो तो भी उन्होंने ऐसा पचा लिया कि उसे अपने रूप को खो देना पड़ा है। जिस प्रकार वैष्णव शास्त्रों से गृहीत होकर भी उनके राम 'दशरथ सुत' नहीं थे, ठीक उसी प्रकार उनके सहज, शून्य, षट्चक्र, इला-पिंगला आदि भी सहजयानि और योगियों से भिन्न अर्थ रखते थे। इतना ही नहीं बल्कि सूफियों की साधना से गृहीत शब्दों की भी उन्होंने अपने ढंग से व्यवस्था की थी।[12]

कबीर की भक्ति भावना पर वैष्णव प्रभाव

सूफी साधना और चिन्तन पद्धति का साधना क्षेत्र में जितना प्रबल प्रभाव पड़ रहा था, उससे कहीं अधिक उस समय वैष्णव साधना का प्रभाव था। उसकी सगुण उपासना और कबीर आदि की निर्गुण उपासना में सीधी टक्कर हो रही थी। परन्तु इन दोनों पद्धतियों में दिखाई पड़ने वाला भेद उनके बाहरी रूप में था, क्योंकि दोनों का मूल तत्व तो एक ही था। कबीर भी अपने को किसी वैष्णव से कम नहीं मानते थे कबीर की भक्ति को 'ज्ञान भगति', 'सुरति में निरति', सहजा भक्ति और नारदी भक्ति की संज्ञा दी गयी है। संक्षेप में यह भक्ति का ही एक विशिष्ट संस्करण है।

सगुण वैष्णव साधना सगुण में निर्गुण उपासना करती है जब कि कबीर निर्गुन में सगुण के उपासक हैं। कबीर ज्ञानी कहला कर भी शुद्ध ज्ञानी मात्र नहीं हैं, इसी प्रकार दूसरा वैष्णवोपासक भक्त कहलाकर भी पूर्णत: भक्त नहीं हैं। अंशत: दोनों ज्ञानमार्गी हैं और अंशत: दोनों भक्त हैं। ब्रह्मवादी कहला कर भी कबीर राम, हरि, कमलापति, नारायण, मुरारी, केशव, माधव, जगन्नाथ, सारंगपाणि, कृष्ण, गोपाल और गोविन्द आदि के उपासक हैं जबकि राम और कृष्ण का उपासक कहलाकर भी वैष्णव संप्रदाय अन्तत: ब्रह्मवादी ही है। अत: कहा जा सकता है कि कबीर को ज्ञानी मानकर उन्हें सगुण साधकों से अलग ज्ञानाश्रयी शाखा में गिनना पूर्ण रूप से उचित नहीं है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कबीर पर रामानन्द का पूरा-पूरा प्रभाव था। जहाँ तक पिंडस्थ 'नाथ निरंजन की आंतरिक उपासना', योगसाधना, अजपाजाप, उन्मुनी तथा खेचरी, भूचरी आदि मुद्राओं के साधना[13], नाद-बिन्दु एवं सुरतिनगर-वर्णन, प्रेम की फाँस, ज्ञानविरह[14], अखण्ड ज्योतिदर्शन और सुरति-निरति-संगम आदि मान्यताओं का प्रश्न है, कबीर ने निश्चित रूप से स्वामी रामानन्द के उपदेशों से ही मार्गदर्शन प्राप्त किया था। प्रमाण के रूप में नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'रामानन्द की हिन्दी रचनाएं' नामक ग्रन्थ पठनीय है। इससे तो हम यह भी निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कबीर के चिन्तन का स्रोत यही ग्रंथ है, जिसमें उनके गुरु ने निर्देशक सिद्धान्तों का चयन किया है। फिर तो हमें कबीर के साहित्य में प्राप्त प्रत्येक प्रकार के विचारों और विरोधाभास जैसे प्रतीत होने वाले विभिन्न सिद्धान्तों से सम्बद्ध उक्तियों की संगति बैठाने में कोई उलझन नहीं होती। श्री रामानन्द की निम्नलिखित पंक्तियों को पढ़ने के बाद कौन कहेगा कि योगविषयक अनुभूति वर्णन तथा तद्विषयक शब्दावली आदि के लिए उन्हें नाथपंथियों का द्वार खटखटाना पड़ा होगा। इस तथ्य की पुष्टि के लिए निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

(क) जहँ नाद विन्दु की हाथी। सतगुर ले चल साथी ।।
(ख) सुरतिनगर का कर सयल। जामें आत्मा का महल ।।
(ग) जोति अखण्डी झिलमिली। बिनु बाती का परकास ।।
(घ) मोती की झालर लगी। जहाँ दर्शन पावे दास ।।[15]

भक्ति का आलम्बन और उसका स्वरूप

कबीर की भक्ति के आलम्बन मूलत: निर्गुण-निराकार राम हैं। दार्शनिक भाषा में उनकी इस मान्यता को एकेश्वरवादी विचारधारा से पुष्ट अद्वैतवाद के निकट मान सकते हैं।[16] परन्तु जब हम एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद के मूल स्वरूप पर गहन चिंतन करते हैं तो पाते हैं कि दोनों में तालमें बैठाना टेढ़ी खीर है। अन्तत: हमें पं० परशुराम चतुर्वेदी के ही निष्कर्ष पर आना पड़ता है—'कबीर यथार्थत: न निर्गुणवादी हैं और न तो सगुणवादी ही। उनका परम तत्त्व निर्गुण एवं सगुण-इन दोनों से परे और अनिर्वचनीय है।[17]

इस सम्बन्ध में कबीर वाद-विवाद में न पड़कर सीधे कह देते हैं 'वो है जैसा वो ही जाने।' अथवा 'जस तूँ तस तोहिं कोइ न जान। लोग कहैं सब आनहिं आन।।'[18] अर्थात् उसका स्वरूप कैसा है, इसे सिवा स्वयं उसके अन्य कोई नहीं जानता। सम्यक् ज्ञान के अभाव में जिसके जो मन में आता है, वह वैसा ही कह देता है। लेकिन उसको जानने का दावा करने वाला जैसा कहते हैं, वह वैसा तो है नहीं, इसलिए इस सम्बन्ध में मौन ही रहना उचित है।[19] साथ ही यह भी सच है कि उसके अनन्त नाम हैं अत: उसके कितने नाम हम ले सकते हैं? क्योंकि नाम के साथ रूप का तादात्म्य तो तब होगा जब उसका कोई रूप होगा। अरूप तो अनाम ही हो सकता है। 'अविगति की गति क्या कहूँ, जिसका गाँव न गाँव। गुनबिहून का पेखिए काकर धरिये नाँव।।[20] इसलिए सर्वसाधारण को उनका यही उपदेश अधिक हितकर है—

'हरि जैसा है तैसा रहै, तू हरषि हरषि गुन गाय।'[21]

पाद टिप्पणी

1. भागवत सम्प्रदाय (पं० बलदेव प्रसाद उपाध्याय) पृ० 519 पर उद्धृत।
   (i) 'आनन्द' आस्पद से युक्त शिष्य-अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्य्यानन्द, योगानन्द, सुखानन्द, भवानन्द और गालवानन्द।
   (ii) जितेन्द्रिय सन्त-कबीर, रैदास, सेना, पीपा, धन्ना तथा पद्मावती (जिसे गणना से आधा ही माना गया है।
2. कबीर ग्रंथा० पद सं० 124।
3. कबीर वचनावली-राग धनाश्री, पृ० 55 (पद सं० 58)।
4. कबीर ग्रंथा० पृ० 82।
5. कबीर मेरी जाति कउ, सभु कोइ हँसनेहारू।
   भलिहारी इस जाति कउ, जिहि जापियो सिरजन हारु।। का० ग्रं० पृ० 164।
6. भक्तमाल (नाभादास) छप्पय सं० 60।
7. हिन्दी काव्य की निर्गुणधारा में भक्ति—डा० श्यामसुन्दर शुक्ल, पृ० सं० 48-84।
8. कबीर रेख सिंदूर की, काजल दिया न जाय।
   नैनु रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाय।। कबीर—पद सं० 175।
9. जायसी ग्रन्थावली (भूमिका), पृ० 146।
10. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० 146।
11. वही, पृ० 37।
12. ज्ञान धूप मन पुष्प इन्द्रिय हुताशनम्।
    क्षमा जाप समाधि पूजा नमो देव निरंजनम्।। —रामानंद की हिन्दी रचनाएं, पृ० 3 शब्द सं० 2।
13. बँधिया मूल देखिया अस्थूल। गगन गरजंत धुनि ध्यान लगा।
    x x x
    ग्यान सों ग्यान मिलि ध्यान सों ध्यान मिलि
    जाप अजपा जपै सोई दम लाइ लखै
    चित सों चित्त मिलि चित्त चेतन भया
    उन्मुनी दृष्टि सों भाव देखै।। —वही 3/6 तथा 5/15।
14. सहजैं सहजैं सब गुन जाइला। भगवन्त भगता एक थिर थाइला।। —वही शब्द सं० 8/4।
15. रामानन्द की हिन्दी रचनाएं, 8/2, 9/9, 10/21 और 10/23।
16. डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० 93-100।
17. कबीर साहित्य की परख, पृ० 92।
18. कबीर ग्रंथावली, पृ० 241/6, तथा 103/47।
19. जस कहिये तस होत नहिं, जस है तैसा सोइ।। —वही 230/3।
20. कबीर ग्रंथावली, 238/5।
21. वही, 17/2।

* * *